स्वयं शास्त्र ने समयसार में कहा, जगह-जगह कहा, व्यवहार सो उपचार, निश्चय सो अनुपचार कहो या यथार्थ कहो। क्या करे? ऐसा मनुष्यदेह मिला, उसमें भी अभी शास्त्र का विपरीत अर्थ करने में रुके। कहते हैं न वह? 'जन्मअंधनो दोष नहीं आकरो, जातिअंधनो दोष नहीं आकरो, जे जाणे नहीं अर्थ, मिथ्यादृष्टि ऐथी आकरो करे अर्थना अनर्थ।' समझ में आया? अंधा तो बेचारा देखता नहीं कि क्या है अर्थ? कैसे अर्थ करुँ? वह अक्षर देखता है, अरे...! व्यवहार के अर्थ को निश्चय में लगा देता है, करे अर्थ का अनर्थ। भगवान आचार्य कहते हैं कि एक-एक गाथा में नयार्थ करना चाहिये। व्यवहारनय से यह कथन है, स्वआश्रय निश्चय से कथन है ऐसा नयार्थ समझे बिना गाथा को मरोड़कर अर्थ करता है, वह बड़ा अन्याय करता है। समझ में आया?

वह कहते हैं कि अंतरंग तप न हो और बाह्यतप हो तो '**उपचार से भी उसे तप संज्ञा नहीं है।**' देखो! निश्चय में शुद्धोपयोग हो तो व्यवहारतप को निमित्तपने उपचार से तप कहने में आता है। निश्चय न हो तो उसको उपचार भी कहने में आता नहीं। निश्चय का आरोप उसमें आता है, वास्तव में वह तप है नहीं। अंतर का शुद्धोपयोग हुआ तो निर्जरा होती है, बाह्यतप से निर्जरा होती नहीं।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मंगलवार, दि. १४-८-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ६**

मोक्षमार्गप्रकाशक, सप्तम अध्याय चलता है। फिर से, '**यहाँ कोई कहे कि...**' वहाँ-से लेना है। है? प्रश्न, प्रश्न। '**यहाँ कोई कहे कि शुभभावों से पाप की निर्जरा होती है,...**' अपने में कषाय मन्द हो तो पूर्व का पाप है उसकी निर्जरा होती है। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। और '**पुण्य का बन्ध होता है।**' शुभभाव से पाप की निर्जरा और पुण्य का बन्ध। '**शुद्धभाव से दोनों की निर्जरा होती है...**' और शुद्धभाव, जितना अंतर रागरहित जितनी वीतरागी पवित्र पर्याय प्रगट हुई उससे तो दोनों की--पुण्य और पाप की निर्जरा है, ऐसा हम कहते हैं। ऐसा शिष्य का

प्रश्न है।

मुमुक्षु :-- द्रव्यसंग्रह की ३५वीं गाथा की टीका में लिखा है।

उत्तर :-- हाँ, लिखा है। भले लिखा हो। अन्दर यह एक अपवाद है। समझ में आया? वह तो आता है। एक अपवाद रखकर अन्दर बात है।

'**उत्तर :-- मोक्षमार्ग में तो स्थिति का तो घटना सभी प्रकृतियों का होता है;...**' माणिकलालभाई!

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- उसकी बात एक ओर रखो। अन्य साथ की रखो न, कल वह बात हो गयी है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपना शुद्ध परिणाम हुआ वह मोक्षमार्ग है। उससे '**घटना सभी प्रकृतियों का होता है;...**' किसी को सब प्रकृति घट जाये।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- मोक्षमार्ग में प्रकृति की स्थिति न घटे? आप का वह प्रश्न उलटा हुआ। पुण्य प्रकृति की स्थिति घटे? ऐसा आप को तो पूछना चाहिये। पाप की स्थिति घटे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह दूसरी बात है। पाप की स्थिति घटे? ऐसा प्रश्न किया।

मुमुक्षु :-- हाँ, मैंने वही किया।

उत्तर :-- तो वह प्रश्न बिलकुल उलटा हुआ। मोक्षमार्ग में पापस्थिति तो घटती ही है, परन्तु पुण्यस्थिति भी घटती है। ऐसा प्रश्न (होना चाहिये)। स्थिति तो संसार है। शेठी!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- क्या स्थिति याद की?

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- ऐसा कहाँ-से आया? नहीं, नहीं, वह सब गप्प है। गप्प कहते हैं? क्या कहते हैं? खोटी कहो। समझ में आया?

यहाँ तो मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय होते ही सब प्रकृति की स्थिति घटती है। पाप की तो घटती है उसमें आश्चर्य नहीं है, परन्तु पुण्य की स्थिति भी घटती है मोक्षमार्ग में। क्योंकि स्थिति संसार है। संसार, पुण्य की हो या पाप की हो, स्थिति तो पुण्य-पाप दोनों की घट जाती है। ऐक बात।

'**वहाँ पुण्य-पाप का विशेष है ही नहीं।**' वहाँ पुण्य और पाप की स्थिति में मुद्त में फेरफार है नहीं कि पाप की स्थिति घट जाये और पुण्य की स्थिति

बढ़ जाये अथवा घटे नहीं। ऐसा पुण्य-पाप में फेर है नहीं। समझ में आया? '**और...**' अब यह बात थोड़ी... वह उदय आता था, भाषा का तो ख्याल बहुत बार आता था, परन्तु तीव्र उदय-उदय करते हैं, परन्तु बन्ध के बिना उदय कैसा? वह बात हमारी ३५ साल पहले नारणभाई के साथ हो गयी थी कि शुद्धोपयोग हो तो अनुभाग तो बढ़े, नया बढ़े, नया बढ़े। नया बढ़े वह बन्ध बिना कैसे बढ़े? समझे? जैसे शुद्धोपयोग बढ़े, वैसे अन्दर अनुभाग, प्रकृति, प्रदेश और स्थिति... तीन की बात नहीं, स्थिति घटती है, प्रकृति, प्रदेश आते नहीं शुद्धोपयोग में, परन्तु अनुभाग का घटना पुण्य प्रकृति का शुद्धोपयोग से भी होता नहीं। समझ में आया? अनुभाग का घटना नहीं (होता), उतनी बात पहली करते हैं। पुण्य प्रकृति का शुद्धोपयोग से भी घटना होता नहीं। अब, घटता नहीं, पहली बात करी। अब बढ़ता है। समझ में आया?

'**ऊपर-ऊपर पुण्यप्रकृतियों के...**' जैसे-जैसे ऊपर-ऊपर के गुणस्थान की शुद्धि बढ़ जाये ऐसे '**अनुभाग का तीव्र बन्ध-उदय होता है...**' उदय होता है, तो बन्ध हो तो उदय होता है। अनुभाग। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति की बात तो पहले की। प्रकृति, प्रदेश तो ... परन्तु ऐसा कोई स्वभाव है कि अनुभाग में रस बढ़े। पूर्ण जहाँ हो गया तो अनुभाग पूर्ण छूट जाता है। '**ऊपर-ऊपर पुण्यप्रकृतियों के अनुभाग का तीव्र बन्ध-उदय होता है...**' कहो, समझ में आया? कहाँ गये? राजमलजी! समझ में आया? डालचंदजी! ऐसा प्रश्न किया तो उसके सामने कहा कि, तुम कहते हो ऐसा नहीं है, भैया! दोनों की स्थिति घट जाये। शुद्धोपयोग से स्थिति तो घट जाये। संसार है न उग्र ऐसा। परन्तु अनुभाग पाप का घट जाये, परन्तु पुण्य का नहीं घटता, पुण्य का नहीं घटता। परन्तु उसका बढ़ता है ऐसी एक विशेषता है। समझ में आया?

ऊपर-ऊपर पुण्यप्रकृतियों का रस, रस, रस.. स्थिति नहीं, अन्दर तीव्र अनुभाग में बन्ध होता है। तीव्र बन्ध होता है तो उदय में तीव्र आता है। कहो, माणिकलालभाई! समझ में आया कि नहीं? वह कहते थे, समझ में नहीं आता है बराबर।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बढ़ा वह नया हुआ न। सत्ता में वह नया आया। वह कहाँ-से आया? नया बढ़े बिना सत्ता में आया कहाँ-से? क्या?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- रस पड़ा नया। तो बन्ध होता है न। अनुभाग का, इतना। पहले पड़े बिना उदय कहाँ-से? वह तो पढ़ते समय बहुत बार दिमाग में तो आता था। लेकिन शब्दों में मालूम नहीं पड़ता था, क्या करे? तीव्र उदय हो, तीव्र उदय हो (कहते हैं) लेकिन (रस) पड़े बिना, नया रस पड़े बिना.. पुराने में, लेकिन नया रस पड़ा

न, नया पड़ा न रस, नया रस तीव्र पड़ा तो उदय आता है।

'**और पापप्रकृतियों के परमाणु...**' देखो इसमें। इसमें वह बात सिद्ध करते हैं। '**पापप्रकृतियों के परमाणु शुभप्रकृतिरूप होते हैं--ऐसा संक्रमण शुभ तथा शुद्ध दोनों भाव होनेपर होता है...**' दोनों कारण से पलटते हैं। शुभ परिणाम हो तो पाप के परमाणु पलटकर पुण्य हो जाते हैं। शुद्धभाव से भी पापप्रकृति पलटकर पुण्य हो जाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- सत्ता में पड़ी हो वह, सत्ता में पड़ी हो वह। भाई! हिंमतभाई! यह आया न? शुद्ध से भी पाप की प्रकृति पलट जाती है। उसमें तो... शुद्ध से भी पापप्रकृति के परमाणु पलटकर शुभप्रकृतिरूप होते हैं। '**ऐसा संक्रमण शुभ तथा शुद्ध दोनों भाव होनेपर होता है...**' समझ में आया?

मुमुक्षु :-- यहाँ तो प्रकृति का भी ... हुआ।

उत्तर :-- हुआ, हुआ न। अनुभाग पड़ा तो प्रकृति भी इतनी पलट जाती है। इतनी हाँ!

मुमुक्षु :-- शुद्धभाव न हो तो...

उत्तर :-- अकेले शुभ से भी प्रकृति तो पलटती है। पाप से पुण्यरूप, लेकिन अहीं तो विशेष शुद्ध की बात करनी है। शुभ में तो साधारण पलटे, वह तो अनन्त बार ऐसे पलटी है। अभवि, भवि को पहले तीव्र बँधा हो, शुभभाव में तीव्र पाप की स्थिति भी घट जाये और पाप पलटकर कुछ पुण्य भी हो जाये। परन्तु यहाँ तो शुद्ध की बात में थोड़ी विशेषता कहते हैं। समझ में आया? जितना कषाय टलकर शुद्धता हुई उससे अनुभाग भी बढ़े और प्रकृति पलट जाये। ऐसा शुद्ध और शुभ में दोनों प्रकृति पलटने की बात है। और शुद्ध में तो अनुभाग बढ़े, बाकी स्थिति आदि...

'**इसलिये पूर्वोक्त नियम संभव नहीं है,...**' तू कहता है कि शुभ से निर्जरा होती है, यहाँ ना कहा, शुभ से निर्जरा होती है उसकी ना कही। भाई! शुद्धता हो तब यह निर्जरा हो, उसमें यह प्रकार बनता है। तू कहता है कि शुभ से पाप की निर्जरा होती है और पुण्यप्रकृति का बन्ध होता है। ऐसा नहीं है। '**विशुद्धताही के अनुसार नियम संभव है।**' कषाय का अभाव, जितना स्वभाव में कषाय के अभाव की परिणति होती है उस अपेक्षा से निर्जरा का संभव है। उसमें थोड़ा समझ लेना। सझम में आया? देखो, अब दृष्टान्त देते हैं।

'**देखो, चतुर्थ गुणस्थानवाला...**' चौथा गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि जीव '**शास्त्राभ्यास...**' करता है, '**आत्मचिंतवन...**' नाम निर्विकल्प अनुभव भी कभी होता है ऐसा '**कार्य**

**करे...**' ऐसा कार्य करे। लो, शास्त्राभ्यास करे। है न? वह, करे (शब्द) दोनों को लागू पड़ता है। '**शास्त्राभ्यास आत्मचिंतवन आदि कार्य करे--वहाँ भी निर्जरा नहीं,...**' यहाँ, विशेष कषाय के अभाव की निर्जरा (नहीं होती), बाकी निर्जरा तो थोड़ी है, लेकिन पंचम गुणस्थान जितनी निर्जरा नहीं होती तो वहाँ निर्जरा नहीं है, '**बन्ध भी बहुत होता है।**' देखो, चौथे गुणस्थान में निर्जरा नहीं और बन्ध बहुत (होता है)। समयसार में कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को बन्ध-बन्ध है ही नहीं। लो। समझ में आया वह तो सम्यग्दर्शन के जोर में अस्थिरता का थोड़ा परिणाम है वह अनंत संसार का कारण नहीं है। इसलिये वहाँ तो एकदम (कहा), सम्यग्दृष्टि मोक्षस्वरूप है। धन्नालालजी! जाहिर हो कि मिथ्यात्व सो संसार है, सम्यग्दर्शन सो मोक्ष है। वह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य बताने को कहा।

यहाँ तो अंश-अंश में जितना बन्ध का कारण है उससे बन्ध होता है और जितनी शुद्धता की बढवारी हुई उतनी निर्जरा होती है। शुद्धता अन्दर में (हो उस अनुसार निर्जरा होती है), प्रवृत्ति अनुसार नहीं। यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि बाह्य में प्रवृत्ति इतनी (करते हैं)। यहाँ कहा, देखो न, चौथे गुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास, आत्मचिंतवन आदि (करता हो)। अनुभव--निर्विकल्प अनुभव में पड़ा हो चौथे गुणस्थानावाला। चिंतवन में उस ओर का विकल्पादि हो और अनुभव भी करता हो, चिंतवन को अनुभव भी कहते हैं, '**वहाँ भी निर्जरा नहीं,...**'

मुमुक्षु :-- गुणश्रेणि नहीं?

उत्तर :-- गुणश्रेणि की यहाँ अभी ना कही है, दूसरी जगह हाँ कही है।

मुमुक्षु :-- मूल में...

उत्तर :-- मूल में है? यहाँ ना कहते हैं। है उसमें मूल में? मूल में? यहाँ तो वह सिद्ध करना है न। यहाँ निर्जरा नहीं है ऐसा सिद्ध करना है। अकषायभाव बढ़नेपर निर्जरा होती है ऐसा सिद्ध करना है। माने है तो सही। परन्तु चौथे गुणस्थान की अपेक्षा पंचम गुणस्थान में दो कषाय का अभाव है, वहाँ भी अभी निर्जरा थोड़ी और बन्ध ज्यादा है ऐसा कहेंगे। समझ में आया? वहाँ भी अभी ऐसा कहेंगे।

यहाँ तो आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है उसकी दृष्टि हुई, इससे अतिरिक्त जितनी अकषाय भाव की परिणति बढ़ती है उससे निर्जरा सिद्ध करना है। प्रवृत्ति के अनुसार निर्जरा है ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया? वह कहते हैं कि शास्त्राभ्यास... भाई! वह तो इसमें निकल गया। वह कहते हैं कि शास्त्राभ्यास से निर्जरा होती है। ... आता है न, धवल में? किस अपेक्षा से बात है उसे समझे बिना... समझ में आया? धवल में वह आता है। तो रतनचंदजी है न? उसने धवल बहुत पढ़ा है न। दूसरों ने नहीं

देखा है?

मुमुक्षु :-- ....

उत्तर :-- वह नहीं देखा हो, उसमें क्या है? माल-माल देख लिया है सब। माल-माल मक्खन ले लिया है। पोपटभाई!

कहते हैं कि आत्मानुभव का कार्य करे '**वहाँ भी निर्जरा नहीं, बन्ध भी बहुत होता है।**' यहाँ तो अशुद्धता का नाश विशेष बताना है और शुद्धता की पवित्रता बढ़े तो निर्जरा होती है, यह बात सिद्ध करनी है। इसलिये कहा न, '**विशुद्धताही के अनुसार नियम संभव है।**' विशुद्धता माने अकषाय भाव, उसके अनुसार बात सिद्ध करते हैं।

'**पंचम गुणस्थानवाला...**' लो। चौथे गुणस्थानवाले को तो अमुक हदवाला है। पंचम गुणस्थान में दो कषाय का नाश हुआ। सम्यग्दृष्टि (है) और दो कषाय का नाश होकर स्थिरता भी चौथे गुणस्थान से स्थिरता भी बढ़ गयी। पहली पड़िमा, दूसरी पड़िमा आती है न? ये श्रावक की। वह पड़िमा का विकल्प नहीं। पड़िमा में लिखा है कि नहीं? उसमें लिखा है। इसमें आया है, कल लेख में पड़िमा आया था। रात को पढ़ा उसमें। पड़िमा यह ली, पड़िमा से ऐसा हो। पड़िमा तो विकल्प है, सुन न। तुझे ज़ोर देना है।

यहाँ तो पंचम गुणस्थानवाले ने दो कषाय का नाश किया है, उपवासादि करता है। उपवास, प्रायश्चित्तादि कर लेते हैं। अर्थात् बाह्य-अभ्यंतर दोनों डाला, दोनों डाला। बाह्य तप भी करते हैं और अभ्यंतर में प्रायश्चित्तादि (करते हैं)। है तो वह भी बाह्य। प्रायश्चित्त, विनय आदि '**तप करे उस काल में उसके निर्जरा थोड़ी...**' उस काल में भी उसको निर्जरा, निर्जरा नाम शुद्ध और अशुद्धि का नाश थोड़ा, कर्म का नाश और अशुद्धि का नाश थोड़ा (होता है)।

'**और छठवें गुणस्थानवाला...**' यहाँ तो यह बात करनी है न। मुनि हुआ। छठवें गुणस्थान में तीन कषाय का नाश (हुआ)। भावलिंगी संत छठवें गुणस्थान में हो, शुभ विकल्प में आये तो '**आहार-विहारादि क्रिया करे...**' देखो! छठवें गुणस्थानवाला आहार करे, स्वाध्याय करे, उपदेश करे ऐसी क्रिया करे, उपदेश के काल में भी, आहार के काल में भी, विहार के काल में भी '**उस काल में भी उसके निर्जरा बहुत होती है,...**' बहुत, वह तीन कषाय का नाश हुआ उस अपेक्षा से है। बाकी नग्नपना है और विकल्प है, उस अपेक्षा से नहीं। पाँचवें की अपेक्षा से छठवें में तीसरे कषाय का नाश है, तो जितनी विशुद्धता बढ़ी उससे निर्जरा होती है। (पाँचवावाला) उपवास करे, यह आहार करे। दोनों आमने-सामने लिया। समझ में आया? पंचम

गुणस्थानवाला उपवास करे, छठवेंवाला आहार करे। पंचमवाला प्रायश्चित्तादि तप करे, यह विहारादि करे। हिले, चले, बोले, व्याख्यान दे। कहो, समझ में आया? '**उस काल में भी...**' उस काल में भी '**उसके निर्जरा बहुत होती है,...**' तीन कषाय का नाश हुआ है, स्वद्रव्य का आश्रय उग्र हुआ है, इस अपेक्षा से उसको निर्जरा बहुत होती है। '**तथा बन्ध उससे थोड़ा होता है।**' लो। उससे भी बन्ध, पंचम की अपेक्षा से छठवें में तो बहुत अल्प बन्ध होता है। कहो, समझ में आया कि नहीं? माणिकलालभाई! बाबुभाई!

'**इसलिये बाह्य प्रवृत्ति के अनुसार निर्जरा नहीं है,...**' यह लेना है। सिद्धांत यह करना है। शुभ परिणाम के अनुसार निर्जरा नहीं है। स्वाध्याय करे और आहार करे। वह कहता है, शुभप्रवृत्ति से निर्जरा है। यहाँ शुद्ध से निर्जरा सिद्ध करनी है। उतना अपवाद है तो बात बीच में कही। '**अंतरंग कषायशक्ति घटने से...**' देखो! अंतरंग में जितना क्रोध, मान, माया, लोभ एक कषाय, दो कषाय, तीन कषाय आदि जो घटे, '**विशुद्धता होनेपर निर्जरा होती है।**' अंतरंग कषायशक्ति नाश होकर अकषायी वीतरागी पर्याय जितनी निर्मल हुई उस अनुसार निर्जरा होती है। कहो, समझ में आया? ये तो बाहर त्याग करे, इसने उपवास किये और उसने वह किया, इसलिये बहुत निर्जरा, मुनि से भी बहुत निर्जरा (होती है)। मुनि आहार करते हैं इसलिये थोड़ी निर्जरा, ऐसा है नहीं। आहार करने में निर्जरा? आहार करने में निर्जरा नहीं है, आहार करने के काल में निर्जरा है, यह क्या? आहार करने के विकल्प से नहीं। परन्तु तीन कषाय का नाश होकर शुद्ध परिणति है उससे वह निर्जरा होती है। आहार करने का विकल्प निर्जरा का कारण नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- .. नहीं ऐसा अभी कहते हैं। अभी कषाय की शक्ति पाँचवेंवाले को ज्यादा घटी है, छठवें में अधिक घटी है, इस अपेक्षा से बात ली है। थोड़ी निर्जरा तो है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- चारित्र, चारित्र। यहाँ चारित्र की प्रधानता की--स्थिरता की, यहाँ स्थिरता को प्रधानता देनी है। समयसार में सम्यग्दर्शन को प्रधानता देनी है। वहाँ भी चारित्र को प्रधानता देते हैं, मोक्ष अधिकार में देते हैं। मुनि को भी पंच महाव्रत का राग आता है वह झहर है, झहर है। अमृत को लूटनेवाला है मुनि का राग। जहाँ-जहाँ जिस प्रकार की अपेक्षा ली उसे समझना चाहिये न। समझ में आया?

'**सो इसके प्रगट स्वरूप का आगे निरूपण करेंगे...**' इससे ज्यादा विस्तार

आगे कहेंगे। लेकिन वह बात रह गयी, देह छूट गया। '**वहाँ से जानना।**'

'**इस प्रकार...**' अब सार (कहते हैं)। '**अनशनादि क्रिया को तपसंज्ञा उपचार से जानना।**' यहाँ तो यह बात कहनी है। एक उपवास, दो उपवास, चार उपवास, उणोदरी, रसपरित्याग, दूध खाना या नहीं खाना, मीठा.. क्या कहते हैं उसे? नमक, नमक। नमक बिना की रोटी खाना। ऐसी बाह्य क्रियाओं को तपसंज्ञा उपचार से है, आरोप से है, व्यवहार से है। '**इसीसे इसे व्यवहारतप कहा है।**' देखो! समझ में आया? ये तो व्यवहारतप ही घोड़ा हो गया। घोड़ा हो गया, समझे? सब हो गया। उससे धर्म हुआ। उपवास किया, उणोदरी की, यह किया, वह किया। धूल में भी धर्म नहीं है। सुन तो सही। वह तो अंतर अकषाय परिणति हो तब बाह्य तप ऐसा हो तो उसको उपचार से, आरोप से, निमित्त से, व्यवहार से कहने में आता है। वास्तव में वह तप है नहीं। भारी बात। विचार करने में श्रद्धा निर्मल करने की चीज क्या है, श्रद्धा कैसे सत्य हो, ऐसा पहले निश्चय करना चाहिये। दूसरी बात एक ओर।

विषयकषाय की आसक्ति घटे बाद में। तत्त्वार्थसार में कहा है न, भाई! बंसीधरजी ने कहा है। आसक्ति घटने से पूर्व भी वास्तविक तत्त्व की विशुद्धि, दर्शनविशुद्धि करनी चाहिये। बाद में आसक्ति घटने का प्रयत्न बाद में होता है। कहो, तत्त्वार्थसार में कहा है, भाईने--बंसीधरजी ने कहा है। कुछ बातें अच्छी ली है। उस वक्त कुछ पण्डितों की अपेक्षा से अच्छा लिखा है। बंसीधरजी सोलापुरवाले थे, चल बसे अब तो।

अब कहते हैं, देखो! '**व्यवहार और उपचार का एक अर्थ है।**' लो। व्यवहार कहो, उपचार कहो, आरोप कहो। ये दवाई में कहते हैं न? उपचार करते हैं, भाई! शेठी! मिटना हो तो मिटे, उपचार करते हैं, भाई! १०५ डिग्री बुखार बहुत समय से है, २१ दिन हो गये, टाईफोयड है, ऐसा है, वैसा है। उपचार करते हैं। होना होगा वैसा होगा। उसका अर्थ यह है। ऐसे इस बाह्यतप को उपचार--व्यवहार से कहने में आता है। वह वास्तव में तप नहीं है।

मुमुक्षु :-- ... करते हैं, जो होना होगा वह होगा।

उत्तर :-- होना होगा वह होगा, सो अकषाय परिणति से होगा, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहीं शुभभाव से और ऐसी क्रिया से होगा ऐसा नहीं है। देखो, व्यवहार, उपचार या निमित्त कहो, एक ही बात है। वह नहीं मानते।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- यह क्या कहते हैं? वह सब कहते हैं, नहीं, नहीं, नहीं। निमित्त देखकर, सहचर देखकर उपचार से व्यवहार संज्ञा समकित को कहने में आयी है। दो नय के अवलंबन से। निमित्त कहो, व्यवहार कहो, उपचार कहो, आरोप कहो, सब एक ही

बात है। तो कहते हैं कि, नहीं, निमित्त को उपचार कहा है ऐसा शास्त्र में कहीं नहीं है। अरे.. भगवान! क्या हुआ? यहाँ की बात एकदम नयी लगी, नयी लगी इसलिये उडायी एकदम। लेकिन वह उड़ जाये ऐसी नहीं है, फूँक मारने से पर्वत गिर जाये, उड़ जाये ऐसा नहीं है। समझ में आया? फूँक से पहाड़... आप में कुछ आता है न? फूँक से पहाड़ ऊड़ाना चाहते हो, ऐसा आता है। फूँक से पहाड़ ऊड़ता नहीं और पहाड़ पहाड़ के कारण ऊड़ता है। सुन न। और उसके कारण से रहता है, किसी के कारण से रहता या जाता नहीं।

'**तथा ऐसे साधन से...**' यह तो निमित्त कहा '**जो वीतरागभावरूप विशुद्धता हो...**' बाह्यतप कहा वह सब निमित्त, व्यवहार। '**वीतरागभावरूप विशुद्धता हो...**' अन्दर अकषाय शुद्धता की परिणति हो '**वह सच्चा तप निर्जरा का कारण जानना।**' निर्जरा नाम धर्म, निर्जरा नाम शुद्धि, निर्जरा नाम मोक्ष का मार्ग।

'**यहाँ दृष्टान्त है--जैसे धन को व अन्न को प्राण कहा है।**' लोग कहते हैं न? धनप्राण, अन्नप्राण ग्यारहवाँ प्राण। ये पैसेवालों को धन ग्यारवाँ प्राण है ऐसा कहे। पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- पोपटभाई तो नहीं आये हैं, ग्यारहवाँ प्राण है।

उत्तर :-- उसके कारण आत्मा के प्राण हैं? इन्द्रिय के प्राण? लोग ऐसा कहे कि धन हो तो ग्यारहवाँ प्राण है और अन्न समा प्राण, ऐसा हमारे काठियावाड़ में कहते हैं। आता है? आप में कोई भाषा होगी। अन्न समा प्राण, हिन्दी में क्या है? अन्नमयी प्राण। हमारे में, अन्न समा प्राण, काठियावाड़ में कहते हैं। अन्न हो तो प्राण है। अरे..! वह तो उपचार की बात है। देखो! '**धन को व अन्न को प्राण कहा है। सो धन से अन्न लाकर...**' धन से अन्न लाकर। दोनों की बात करनी है न। '**उसका भक्षण करके प्राणों का पोषण किया जाता है;...**' पैसे से अनाज लाये, अनाज का भक्षण करे तो प्राण, इन्द्रियों का पोषण हो। '**इसलिये उपचार से धन और अन्न को प्राण कहा है। कोई इन्द्रियादिक प्राणों को न जाने...**' इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय आदि प्राणों को तो न जाने '**और इन्ही को प्राण जानकर संग्रह करे...**' अन्न का संग्रह करो, अन्न का संग्रह करो, अन्न का संग्रह करो। खाये नहीं। समझ में आया? क्योंकि उसको भी प्राण कहने में आता है। '**इन्ही को प्राण जानकर संग्रह करे तो मरण को ही प्राप्त होगा।**' खाये नहीं और मर जाये, अनाज की कोठी भरे तो। अनाज की कोठी भरकर रखे (क्योंकि) वह तो प्राण है न, प्राण है न। लेकिन वह तो उपचार का प्राण है। यह प्राण रहे तो उसको प्राण कहने में आता है। प्राण कहाँ-से आया जड़ में, बाहर में?

'**उसी प्रकार अनशनादि को तथा प्रायश्चित्तादिक को तप कहा है,...**' बाह्य, हाँ! बाह्य साधन। अनशन, उणोदरी, वृत्ति... रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वय्यावृत्त को तप कहा। '**क्योंकि अनशनादि साधन से...**' आहार न हो। ऐसा विकल्प घट गया। '**प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्तन करके...**' उसके विकल्प में रहे। उससे '**वीतरागभावरूप सत्य तप का पोषण किया जाता है,...**' अंतर में ध्यानादि करके निवृत्ति के काल में शुद्धता का पोषण किया जाय उसको निर्जरा कहने में आता है। '**इसलिये उपचार से अनशनादि को तथा प्रायश्चितादि को तप कहा है।**' उपचार से, व्यवहार से प्रायश्चित्त, विनय, वय्यावृत्त, सज्झाय, ध्यान, व्युतसर्ग इन सब को व्यवहार कहा है। लो।

'**कोई वीतरागभावरूप तप को न जाने...**' (दृष्टान्त में) इन्द्रिय को न जाने और सिर्फ लक्ष्मी का संग्रह किया करे। वैसे यहाँ, वीतरागभावरूप चैतन्य की जागृति, अकषायभाव को तो न जाने '**और इन्ही को तप जानकर संग्रह करे...**' अनशन करो, वृत्ति (संक्षेप करो), रसपरित्याग (करो), यह छोड़ो, वह छोड़ो, यह खाओ, यह पीओ, इस न रखो। '**तो संसारही में भ्रमण करेगा।**' वह बाह्य तप करने बावजूद चार गति में भ्रमण करेगा। कहो, बराबर है? क्या करना? तो फिर खाना न? वह प्रश्न नहीं है। खाने का भाव भी पाप है और छोड़ने के भाव में विकल्प आया वह पुण्य है। लेकिन उससे निर्जरा है, धर्म है ऐसी बात नहीं है। यह बात बतानी है।

अकषाय भाव जितना ज्ञाता-दृष्टा का भान होकर शुद्धता बढ़े उससे निर्जरा होती है, उससे कर्म का क्षय, अशुद्धता का नाश, शुद्धता की बढ़वारी उससे होती है। समझ में आया? एक साधु था। वह दिन में खाता नहीं, रात को खाता नहीं, चौबीस घण्टे खाता नहीं, इसलिये वह समकितदृष्टि होगा कि नहीं? ऐसा प्रश्न आया था। यहाँ प्रश्न बहुत आते हैं। वहाँ सम्यग्दर्शन की बात बहुत चलती है, और यह ऐसा त्यागी, खाये नहीं, रात-दिन खाये नहीं, सर नीचे पैर ऊपर, ऐसा खड्डा। दिगंबर का यहाँ प्रश्न आया, दिगंबर में जन्म लिया हो उसका। महाराज! उसको सम्यग्दृष्टि है कि नहीं? (दिगंबर में) जन्म हुआ लेकिन कुछ मालूम नहीं। दिगंबर धर्म क्या है? समझ में आया? दिगंबर धर्म क्या चीज है, उसका पत्ता नहीं। जन्म लिया, कुछ मालूम नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसा अनशन करके मर जाये, सूख जाये तो भी अंतर सम्यग्दर्शन और स्थिरता बिना निर्जरा होती नहीं। धर्म का भान नहीं, कहाँ-से निर्जरा आयी? बारह-बारह महिने का उपवास करे। ओहो..! ये तो बहुत करता है, हाँ! शरीर जीर्ण हो गया है, कुछ खाता नहीं, मौन, मौन, मौन तीन-तीन साल मौन रहा। तीन साल काष्ट मौन। लोगों को तो ऐसा हो जाये, ओहोहो..!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह तो बारह वर्ष मौन रहे। बारह-बारह वर्ष मौन रहे। हम वहाँ गये थे न, हुबली-हुबली। हुबली का एक महात्मा था। वहाँ बेचारा प्रवचन सुनने को आया था। हमने प्रवचन किया न, उसके मठ में भी व्याख्यान किया था। बड़ा मठ था। लोग बहुत थे न। तो हुबली के मठ में व्याख्यान किया था, सब आये थे व्याख्यान सुनने को। लेकिन वह बारह वर्ष से मौन था, लो। अरे..! मौन में क्या आया? अंतर वस्तु क्या है? राग क्या है? जड़ की स्वतंत्रता क्या है? पृथक् का भेदज्ञान बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं और उसके बिना शुद्धि की वृद्धि होती नहीं। मौन रहकर मर जाये न। यहाँ तो कहते हैं कि समकिती--ज्ञानी का बोलना सो मौन है, चलना सो समाधि है। शेठी! समयसार नाटक में आता है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह तो मुनि को। यह तो सम्यग्दृष्टि, चाहे रहो वन में, चाहे रहो मन्दिर में। वह चले सो उसकी समाधि है, बोले सो उसका मौन है। डोले वह उसकी समाधि है। क्रिया उसके कारण है, अन्दर अकषाय श्रद्धा की परिणति हुई है उससे सब लाभ होता है। समझ में आया? वह समयसार नाटक में लिखा है। समयसार नाटक पढ़ा है कि नहीं? लो, पढ़ा नहीं? दिगंबर में जन्म लिया अभी तक। समयसार नाटक, समयसार है। उसके कलश का अर्थ है उसमें। बहुत अच्छा किया है, बनारसीदास, बहुत अच्छा है। कलश को पद्य में लिया है, पद्य में। पद बनाये हैं, बहुत अच्छी बात, बहुत अच्छी। बनारसीदास तो बहुत... पावर फट गया। बहुत ज्ञानी, सम्यक्ज्ञानी (थे) लेकिन उनके पुरुषार्थ की उग्रता... बड़ा काम किया। व्यवहार जितना है उससे लाभ माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। जितना असंख्य अध्यवसाय व्यवहार उसमें लाभ माननेवाले को उतना ही मिथ्यात्व है। चिल्लाने लग जाये ऐसा है। अरेरे..रे..! व्यवहार सो मिथ्यात्व? व्यवहार सो मिथ्यात्व? व्यवहार से लाभ मानना सो मिथ्यात्व है। व्यवहार से जानने को मिथ्यात्व नहीं (कहते)। उससे लाभ माने तो, व्यवहार से कुछ ... है, कुछ लाभ, कुछ है, कुछ है उसमें। अनशनादि में कुछ तो है। कुछ है, बन्ध। समझ में आया?

'**कोई वीतरागभावरूप तप को न जाने और इन्हीं को तप जानकर संग्रह करे तो संसारही में भ्रमण करेगा। बहुत क्या...**' क्या कहें? '**इतना समझ लेना कि निश्चयधर्म तो वीतरागभाव है।**' लो। सच्चा धर्म जितना ज्ञाता-दृष्टा होकर राग रहित स्थिरता होती है वही एक वीतरागभाव ही धर्म है। बाकी अन्दर में विकल्पादि, पंच महाव्रतादि सब आये वह धर्म-बर्म है नहीं।

मुमुक्षु :-- इस देश में धर्म नहीं होगा, अन्य देश में...

उत्तर :-- दूसरे देश में धर्म होगा। दूसरे देश में होगा? दूसरे देश में फ़सल दूसरी होती होगी, ऐसा होगा? झहर की फ़सल। निश्चयधर्म सच्चा धर्म, प्रमाणिक धर्म, वास्तविक धर्म वीतरागभाव है। बीच में राग आता है वह धर्म है नहीं। वह तो उपचार से कथन करने में आया है।

'**अन्य नाना विशेष...**' अनेक प्रकार का विशेष '**बाह्यसाधन की अपेक्षा उपचार से किये हैं...**' कहो। दूसरे तप को, विनय को, वय्यावृत्त को सब को उपचार से कहा है। '**उनको व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जानना।**' उसको तो व्यवहारमात्र धर्म जानना। '**इस रहस्य को नहीं जानता...**' देखो, निर्जरा में यह बात ली। 'रहस्य' शब्द डाला। इस रहस्य को तो पीछानता नहीं '**इसलिये उसके निर्जरा का भी सच्चा श्रद्धान नहीं है।**' रहस्य को पीछानता नहीं। बाह्यप्रवृत्ति तो निमित्त गिनकर और उसमें बाह्य से निवृत्ति हुई न, तो अंतर में उपयोग की शुद्धता का बढ़वारा हो उससे निर्जरा होती है या धर्म होता है। अन्य किसी से बारह प्रकार के तप से धर्म होता नहीं। यह पढ़े नहीं।

टोड़रमल का पढ़ना नहीं, ऐसा कोई अभी कहता था। वह मख्खनलालजी है न वहाँ? दिल्ही, दिल्ही। टोड़रमल का पढ़ना नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर सके नहीं ऐसा कोई कहे तो उसका (साहित्य) पढ़ना नहीं। कहो, अरे.. भगवान! सर्वज्ञ परमात्मा तो कहते हैं कि विष्णु को जगत का कर्ता कहते हैं, ऐसे हमारा कोई जैन श्रावक, साधु नाम धारण करके छः काय की दया पाल सकता है ऐसा माने, शरीर की रक्षा करना माने, वह विष्णु जैसा मिथ्यादृष्टि है। उसमें कुछ फेर है नहीं। जैन में और अन्य में कुछ फेर नहीं। विष्णु ने जगत का कर्ता माना, इस जैन ने शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, छः काय की दया पाल सकता हूँ, तो इतने का कर्ता हुआ। कर्ता की दृष्टि में कोई फेर है नहीं।

मुमुक्षु :-- छः काय की दया...

उत्तर :-- मुनि पालते नहीं। मुनि क्या पालते हैं? वह तो राग मंद होता है तो पालते हैं ऐसा कहने में आता है। पर की पर्याय कौन पाले? पाले कौन? रखे कौन? टाले कौन? आहाहा..! भारी गड़बड़ भाई! कल कोई कहता था न? दिल्ही। भाई! भाई थे न? दिल्ही, मक्खनलालजी। भाई! अपने यहाँ मक्खनलालजी आये थे न? यहाँ आये थे हाँ! मानस्तंभ की (प्रतिष्ठा में)। जुगलकिशोर के साथ आये थे न? सब थे। दोसौ लोग। नहीं, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का न करे... प्रत्यक्ष कर सकता है। शेठी! आँख का ओपरेशन करवाया, आँख अच्छी की, ऐसा नहीं कर सकते? पाल सकते हैं, बोल सकते हैं, चश्मा साफ कर सकते हैं, आँखमें से कचरा निकाल सकता है, पेशाब कर सकता है, दिशा कर सकता है, थूक निकाल सकता है।

पूरा दिन करता है और कहते हैं कि करता नहीं, करता नहीं, करता नहीं। पढ़ना नहीं ऐसा कहा। मैंने पूछा, कौन बीसपंथी है? टोडरमल का निषेध क्यों करता है? तो कहा, हाँ, बीसपंथी लगता है। ऐसा कुछ कहा, भाई को बहुत मालूम नहीं है। जयकुमारजी को।

मुमुक्षु :-- बीसपंथी तो ना ही कहे न।

उत्तर :-- इसलिये कहता हूँ। मुझे लगा, ना कहता है, ऐसा क्यों? तेरापंथी ना नहीं कह सकता। बीसपंथी है न। नहीं। अरे.. भगवान! तेरा (अभिप्राय) छोड़ दे न, सत्य क्या है (यह देख)।

मुमुक्षु :-- आप को पढ़ना हो तो छठवाँ छोड़कर दूसरा पढ़ना।

उत्तर :-- जाओ, छठवाँ एक छोड़ देना, ये लोग कहे कि पाँचवाँ छोड़ देना, श्वेतांबर, स्थानकवासी। ये पाँचवाँ अध्याय है न? उसमें श्वेतांबर और स्थानकवासी को तो अन्यमति कहा है, वह जैन है ही नहीं। क्योंकि जैनदर्शन से विपरीत बहुत किया है। देव अरिहंत को आहार लेना, अरिहंत को क्षुधा लगना, अरिहंत को रोग होना ऐसा कहा। अरिहंत स्त्री होना, मल्लिनाथ। श्वेतांबर जैन है ही नहीं। वह तो अन्यमति है। ऐसा पंचम अध्याय में टोडरमलजी ने कहा है और यथार्थ कहा है। समझ में आया? सब सुनना धीरे से, हाँ! पोपटभाई के पुत्र को कहता हूँ। पोपटभाई! स्थानकवासी और श्वेतांबर को जैन कहा नहीं, जैन ही नहीं। जिसमें बन्ध अधिकार की अधिकता बताते हैं और आंशिक शुद्धता हो वह तो बात ही नहीं। नहीं, जैन नहीं है। समझ में आया? तो अन्य मत में डालते हैं।

ऐसे कोई पर का कर्ता, परद्रव्य का कर्ता हो वह, जैसे विष्णु की प्रवृत्ति चलती है उसमें उसको जोड़ दो, वह जैन है नहीं। समझ में आया? तो वह कहते हैं, नहीं, टोडरमल का पढ़ना नहीं। वह एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता (ऐसा कहते हैं)।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बहुत ... गड़बड़ करते हैं, सब गड़बड़ करते हैं। वह तो एक उसने बनाया है न? मैना सुंदरी, उसका गीत बनाया है। क्या कहते हैं? भूल गये। नाम आता है न? क्या? पाठ पढ़ लो, उसमें ऐसा होता है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, बस वह। यहाँ कहीं सब थोड़ा याद रहता है। पाया मैना राणी, पूजा का फल पाया मैना राणी, ऐसा उसमें आता है। पूजा का फल प्राप्त किया। अरे.. भगवान! क्या है? ऐसा पूजा का फल रोग मिटे, वह तो उपचार से कथन

किया। उस वक्त पुण्य का उदय था, तो मिटे। महामुनियों को खा जाते हैं, देखो न। संत, पंच महाव्रतधारी महंत संत, महंत तीन कषाय का नाश है। उसकी माता खाती है तो क्या उसमें है? उसमें क्या अपनी वीतरागता चली जाती है? समझ में आया? उसको उतने पुण्य से ब्रह्मचर्य से हो गया, पूजा से हो गया। ये (मुनिराज) तो महा पूजा करने लायक है। स्वयं ही पूजा करने लायक हैं। उसकी पूजा करे, ऐसे तो स्वयं परमेश्वर हैं। पंच परमेष्ठी में परमेश्वर हैं। वह तो पूर्व का पाप-पुण्य का उदय उस अनुसार संयोग बनता है। उसमें स्वभाव को क्या है? स्वभाव में है नहीं। इतना धर्म करे तो उसको रोग मिट जाये, पूजा करे तो ऐसा हो। मैना राणी, पूजा का फल पाया मैना राणी। लक्ष्मीचंदजी! बहुत अच्छा लगे। अपने कुटम्ब में भी ऐसा कोई रोग हो तो भगवान (की पूजा करना)। नहीं मिटेगा तो क्या भगवान को झूठा ठहरायेगा? क्या करना है तुझे? पूर्व के पाप के कारण से ना मिटे तो भगवान झूठे हैं? भगवान तो त्रिकाल सत्य है। तीन काल तीन लोक में अरिहंत सर्वज्ञ परमात्मा परम सत्य, इन्द्रों--सौ इन्द्रों द्वारा पूज्य हैं। तेरा भाव ऐसा हो नहीं और पूर्व का पुण्य न हो तो रोग न मिटे, उसमें क्या हुआ? उससे क्या भगवान झूठे हो जाते हैं?

मुमुक्षु :-- ... पानी से रोग मिटे।

उत्तर :-- हाँ। पानी था। लेकिन भगवान को छूकर पानी था इसलिये (रोग) मिट गया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो बीसपंथी को डालना है न, पंचामृत डालना है न। भाई! रहने दे न। भगवान तो निवृत्तिमय थे, उनको तो एक जलाभिषेक था। ऐसी बात है, सत्य तो ऐसा है। समझ में आया? भगवान को तो... वह तो वीतराग है। जैसा वीतराग था ऐसा बिंब होना चाहिये न? कि दूसरा बिंब होना चाहिये? जैसा मनुष्य का शरीर हो ऐसा दर्पण में प्रतिबिंब उठता है न? कि यहाँ लाल हो और वहाँ सफेद (प्रतिबिंब) उठता है? यहाँ सफेद हो और वहाँ लाल उठता है?

भगवान वीतराग थे, अक्रिय बिंब थे। उसमें कुछ नहीं था। एक पानी से साफ करना (होता है), मैल न हो इसलिये। दूसरी चीज उसमें हो सकती नहीं। शेठी! शेठी भी बीसपंथी है। कहो, समझ में आया? यह तो पहले की बात है। यह तो उसका पुत्र आया न, बदल दिया, पूरे कुटुम्ब को बदल दिया।

'**इसलिये उसके निर्जरा का भी सच्चा श्रद्धान नहीं है।**' एक भी तत्त्व का तेरा ठिकाना नहीं है और तू कहता है कि मैं जैनधर्मी हूँ। जीव का, अजीव का ठिकाना नहीं, आस्रव का ठिकाना नहीं, पुण्य-पाप का ठिकाना नहीं, बन्ध का ठिकाना

नहीं, निर्जरा का ठिकाना नहीं। एक रहा मोक्ष अब। अब एक मोक्ष रहा।

मोक्षतत्त्व तो अरिहंत, सिद्ध का लक्षण है। समझे? वह कहीं डाला है, इसमें कहीं लिखा है, है कहीं पुराने में? मैंने लिखा है, कहीं लिखा है। पीछे डाला है। लाल अक्षर से लिखा है। पीछे आता है वह अलग बात है। वह तो आता है, वह तो मालूम है। तिर्यंच के अधिकार में। देव-गुरु आ जाते हैं अन्दर।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह तो है, वह तो मालूम है। अनुसंधान करके लिखा है, लाल अक्षर से। वह तो आता है, ख्याल में है।

मोक्षतत्त्व तो अरिहंत, सिद्ध का लक्षण है। अब, इसमें कुछ कारण ...क्या? मोक्ष समझते नहीं उसको अरिहंत, सिद्ध का भी भान नहीं है। अरिहंत, सिद्ध की पीछान नहीं, केवलज्ञान की खबर नहीं। जिसको केवलज्ञान क्या है और एक समय में तीन काल तीन लोक सामान्य विशेष सब जानते हैं, उसमें गड़बड़ करते हैं तो वह अरिहंत, सिद्ध को भी जानते नहीं और मोक्ष को भी जानते हैं। इसलिये थोड़ा लिखा होगा ऐसा लगता है। समझ में आया?

धर्म का मूल तो अरिहंत है, उनके वाणी निकली है और भाव था अन्दर से ... तो सर्वज्ञ को ही अभी समझते नहीं। वह कहता है, एक समय में आसा जाने। देखो न, आया है न, कल ही आया है। कल नहीं, पहलेवाले में आया है। आप के सात प्रश्न में बहुत आया है। केवलज्ञान अनादिअनंत जाने कि नहीं? भगवान जाने। और वह छद्मस्थ जाने कि केवली जाने? अरे..! दोनों जाने। सुन न। अनादिअनंत न जाने तो ज्ञान कैसा? स्वयं का आत्मा आदि-अंत रहित है ऐसा ज्ञान न हुआ तो ज्ञान कैसा आया? ... अरे..! चल.. चल। वस्तु तो अनादिअनंत है। केवली को अनादिअनंत में सादिसांत हो जाता है। केवलज्ञान के बहुत घोटाले निकले। क्रमबद्ध बाहर आया, क्रमबद्ध बाहर आया और घोटाला खड़ा हुआ।

कहते हैं कि '**तथा सिद्ध होना उसे मोक्ष मानता है।**' लो। मोक्षतत्त्व की भूल बताते हैं। सिद्ध होना उसे मोक्ष (मानता है)। '**वहाँ जन्म-मरण-रोग-क्लेशादि दुःख दूर हुए अनन्तज्ञान द्वारा लोकालोक का जानना हुआ,...**' लो, यह सिद्ध का लक्षण बाँधते हैं। अहो..! जन्म, जरा, मरण, रोग, क्लेशादि दुःख दूर हुए '**अनंतज्ञान द्वारा लोकालोक का जानना हुआ...**' लोकालोक को जाना, स्वयं कहाँ गया? '**त्रिलोकपूज्यपना हुआ,...**' ओहो..! तीन लोक में पूज्य हुए। '**इत्यादि रूप से उसकी महिमा जानता है।**'

'**सो सर्व जीवों के दुःख दूर करने की, ज्ञेय जानने की, तथा पूज्य होने की इच्छा है।**' ..

समझ में आया? '**सर्व जीवों के दुःख दूर करने की,...**' जन्म, जरा, रोग, क्लेशादि दुःख। '**ज्ञेय जानने की,...**' लोकालोक को जाने वह। '**तथा पूज्य होने की इच्छा है।**' तीनों बात ले ली। '**यदि इन्हीं के अर्थ मोक्ष की इच्छा की...**' इसके लिये मोक्ष की इच्छा की '**तो इसके अन्य जीवों के श्रद्धान से क्या विशेषता हुई?**' तेरी और अन्य जीव की श्रद्धा में कहाँ फ़र्क़ पड़ा? क्या फ़र्क़ हुआ? हम जैन हैं, मोक्षतत्त्व ऐसा मानते हैं। सिद्ध लोकालोक को जानते हैं, त्रिलोकपूज्य हैं, जन्म, जरा, मरण से रहित हो गये हैं। तो वह दुःख दूर करना, पूज्यपना करना, ज्ञेय को जानना इसकी चाह तो सर्व जीवों को है। तो तेरी सर्व जीव से श्रद्धा में क्या फ़र्क़ हुआ? मोक्षतत्त्व की तुझे खबर नहीं है। ईश्वरचंदजी! मोक्ष की बड़ी गड़बड़ कर देते हैं मोक्ष में।

'**तथा इसके ऐसा भी अभिप्राय है...**' देखो! पुनः... मोक्षतत्त्व की दूसरी भूल बताते हैं। '**तथा इसके ऐसा भी अभिप्राय है कि स्वर्ग में सुख है उससे अनन्तगुना सुख मोक्ष में है।**' इन्द्र के सुख से मोक्ष में अनन्तगुना सुख है।

मुमुक्षु :-- ऐसा आता है।

उत्तर :-- आये वह तो उपचार करके आया है। सर्वोत्कृष्ट सुख लोक में दूसरे दिखे नहीं तो देव के सुख का ख्याल करवाकर अनन्तगुना कहे। परन्तु जाति एक है तो अनन्तगुना कहना? वह स्वर्ग का सुख तो जहर है। भगवान आत्मा का सुख तो अनंत आनंदअमृत है। तो जहर से अमृत गुणाकार कहाँ-से होगा? समझ में आया?

'**स्वर्ग में सुख है उससे अनन्तगुना सुख मोक्ष में है।**' बहुत लोग मानते हैं कि नहीं? ओहो..! मोक्ष में सुख इन्द्र से अनन्तगुना। '**सो इस गुणाकार में वह स्वर्ग-मोक्षसुख की एक जाति जानता है...**' स्वर्ग के सुख की जात और मोक्ष के सुख की जात, एक वर्ग, एक प्रथम कक्षा का वर्ग। फिर पाँचसौ नंबर का हो या प्रथम नंबर का हो। '**वहाँ स्वर्ग में तो विषयादिक सामग्रीजनित सुख होता है,...**' वहाँ तो विषयादिक सामग्रीजनित राग का, राग का--जहर का सुख है। पैसेवाले को सुखी कहते हैं न? धूल में भी सुख नहीं है। सामग्री को देखकर कल्पना करता है कि मुझे ... कोई कहता था न? कितनी कमाई? वह तो बहुत कहते थे। एक दिन की तीस हजार की कमाई है। ऐसा कहते थे। पोपटभाई थे न? गये, अभी नहीं है। उनके साले गोवा में रहते हैं न, दशाश्रीमाली हैं। जोरावर (नगर) है न। शांतिलाल। लेकिन पाँच-सात हजार की एक दिन की कमाई होगी ऐसा लगता है। दस-दस लाख का तो वहाँ बँगला है, गोवा में। एक क्रोड़ रूपये का सामान पड़ा है। क्या कहते हैं? कूँआ में से तेल निकालते हैं, क्रोड़पति, वह तो अरबपति कहते थे। पोपटभाई कहते थे, अरबपति तो नहीं होंगे लेकिन बहुत होंगे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, अन्दर से ऐसा निकालते हैं। एक दिन की तीस हजार की कमाई। ओहोहो...! बारह महिने में साठ लाख। ... कमाई। पूरा दिन पैसा बढ़ गया तो लड़का कहता है, यह गाड़ी लेनी है, दूसरा कहे, वह गाड़ी लेनी है, बदल दो, वह कहे, यह लेनी है, ऐसा तकिया लगाना है, ऐसी लकड़ी डालनी है। पूरा दिन लकड़ी में जाता है। पैसा बहुत, दशाश्रीमाली बनिये हाँ अपने। है न जोरावरनगर के? पोपटभाई लिंबडीवाले हैं न? परनाळावाले। ये ..भाई के गाँव के। पोपटभाई, परनाळा के। इनके भाई है न? आप के मामा के पुत्र। शांतिलाल की बात चलती है। कितनी कमाई? पोपटभाई कहते थे, एक दिन की तीस हजार की। एक दिन की। ए.. कुंवरजीभाई! व्यर्थ। होशियार होकर किया है, सब की क़िमत उड़ा देने जैसा है, उसमें कुछ नहीं है। तीस हजार की तो नहीं होगी, लेकिन पाँच-सात हजार की होगी।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- तीस हजार? कितने? बीस हो तो बारह महिने के कितने हो गये? होगी। बीस हजार एक दिन का तो छः लाख महिने का और बहत्तर लाख बारह महिने में। बहत्तर लाख बारह महिने में। होगी, बड़ी कमाई है, बड़े कारखाने हैं। बनिया है लो, अपने दशाश्रीमाली। पाणासणा के हैं। इनके मामा के पुत्र, मामा के पुत्र। धूल में भी सुख नहीं है, ऐसा यहाँ कहना है। वे अभी कहते थे, पूरा दिन पुत्र और पुत्रियाँ, लड़का-लड़की। पैसा बहुत, ऐसा लाओ, ऐसा मकान (करो), इसका ऐसा करो, गाड़ी लाओ, यह लाओ, वह लाओ, पूरा दिन होली जले। शांति अल्प भी नहीं इतने पैसे हुए तो भी। धूल में भी नहीं है। पैसे में कब शांति थी? पोपटभाई! ज्यों-ज्यों पैसा बढ़े त्यों-त्यों लड़के भी ऐसा ही करे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- ... हो गया है।

कहते हैं, वह तो सामग्रजनित कल्पना है स्वर्ग में। सामग्री बहुत मिली उसकी कल्पना है। उसके सुख को तू सिद्ध के सुख के साथ मिलाता है? कहाँ अतीन्द्रिय आनंद अमृत से तरबतर आनंद मुक्ति में और कहाँ जहर का आनन्द। पैसा और धूल, पचास लाख, क्रोड़ पैदा करता हो तो उसमें क्या हुआ? वह तो पूर्व का पुण्य हो तो मिल, उसमें क्या आया? धूल में भी कुछ है नहीं। हम बराबर सँभालते हैं, लो। कुंवरजीभाई! देखो, दूसरे की दुकान ऊड़ गयी, हम ध्यान रखते हैं तो दुकान चलती है। आचार्य कहते हैं कि सब असत्य है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उसने कहाँ व्यापार कहाँ किया है? सब बुद्धि समझने जैसी है। वह तो होने के काल में होता रहता है। कहा न? बनिये का नहीं कहा? एक दिन में, एक महिने में पचास लाख। पारेख, नहीं? कहाँ गये अमृतलालभाई? ये रहे, उनके साले केशवलाल पारेख, एक महिने में पचास लाख। वह तो धूल में पूर्व के पुण्य के रजकण हो तो आ जाये। उसमें आया क्या? तुझे कहाँ शांति और धर्म है? पैसा खर्च करेंगे तो धर्म होगा। धूल में भी धर्म नहीं है, सुन तो सही। वह तो राग मंद करे तो पुण्य हो। बाकी धर्म-बर्म कैसा उसमें?

तो कहते हैं कि स्वर्ग का सुख तो सामग्रीजनित है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। समझ में आया? सामग्रीजनित है न? सामग्रीजनित। आत्मजनित नहीं। वह तो सामग्री देखकर ऐसी कल्पना, कल्पना, कल्पना (करे कि), ऐसा करुँ, घर की गाडी बनाओ, साठ लाख की एक बनाओ। साठ लाख की गाड़ी, दुनिया में हिन्दुस्तान में न हो ऐसी एक गाड़ी बनाओ। क्या करना है? पैये अलग, फलाना अलग, ढिकना अलग... ऐसी सामग्री की कल्पना, होली जलती है और दुःखी है।

'**उसकी जाति इसे भासित होती है,...**' स्वर्ग के सुख की जात मोक्ष में भासित होती है '**परन्तु मोक्ष में विषयादिक सामग्री है नहीं,...**' मोक्ष में तो कहीं विषयसामग्री नहीं है।

मुमुक्षु :-- पैसा भी नहीं है।

उत्तर :-- पैसा भी नहीं है और आहार का कण भी नहीं है। रहने को मकान भी नहीं है। लाड़ी, गाड़ी, वाड़ी, घोड़ी वहाँ कुछ नहीं है। सिद्ध में लाड़ी नहीं, वाड़ी नहीं, गाड़ी नहीं, घोड़ी नहीं। पहले गाड़ी थी न? गाड़ी कहते हैं न? कार, कार कहते हैं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो अतीन्द्रिय आनंद का सुख है, पर का क्या आया? भगवान आनंदकंद का पर्वत है उसमें से निकालकर आनंद की अनंती पर्याय निराकुल शांतरस जिसके अनंद की गंध इन्द्र के इन्द्रासन में नहीं ऐसा। कहाँ आत्मा का सुख और कहाँ स्वर्ग का सामग्रीजनित सुख, दोनों की एक जाति माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। उसको मोक्ष के सुख का पत्ता नहीं। क्या मोक्ष का सुख है, मालूम नहीं, लो। समझ में आया? कहाँ सुख है? धूल भी नहीं है। बहुत पैसा हो जाये तो लड़के भी माने नहीं। पोपटभाई! हाँ, फिर कहे कि, आप पुराने गर्भश्रीमंत नहीं हैं, हम गर्भश्रीमंत आये हैं। आप ज्यादा बोलना नहीं, बापू! आप तो पहले साधारण थे और हम पाँच-दस लाख में आये, गर्भश्रीमंत आये हैं, उसके अनुसार सामग्री चाहिये। ठीक भाई!

हाँ, हाँ, ऐसा होता है। बना है उसकी बात चलती है। एक जन कहता था, कहा न। लड़का बारह साल का था। गृहस्थ के यहाँ जन्म हुआ था। दस लाख रुपया, पचास-साठ पहले की बात है। उसका बाप पैसा नहीं भेजता था। पुना में पढ़ता था, दशाश्रीमाली बनिये का लड़का पुना में पढ़ता था। पैसा नहीं भेजते थे तो कहा, बापू! चाचा साथ में है उनको जचे नहीं तो एक महिने का दोसौ रूपया जेबखर्च के चाहिये। लिखकर भेजना, अपने खाते में लिखकर। मैंने गरीब के घर जन्म नहीं लिया है, ऐसा लिखा था। हमें तो बहुतों की बात मालूम है, बहुत की मालूम होती है। हम घोड़ागाड़ी के घर में जन्मे हैं। उसमें जन्म लिया है, गरीब के घर नहीं। उस वक्त तो लक्ष्मी रोकड़ थी न। वह हम उठाते हैं। उस वक्त पैसा चांदी में थे न। लाख, दो लाख आते थे, सौ-सौ हजार की थैली आती थी न, एक-एक हजार की सौ थैलियाँ। जहाँ रखनी हो कोई कमरे में, वहाँ मजदूर न ले जाय, घर के सदस्य को बुलाये। मजदूर कुछ हद तक ले जाये, बाहर तक। दो सौ, तीन सौ थैलियाँ आयी हो। एक-एक थैली हजार की हो, तीन लाख। लड़के को बुलाये उठाने। उस वक्त हमारी कमर टूटती हैं, उसे जब अन्दर ले जाना हो तब। और आप कहते हो कि एक महिने का... यह तो पहले की बात है, चालीस साल पहले की। पैसा चाहिये, एक महिने का दो सौ रूपये का खर्च चाहियेगा। खाने-पीने का बात अलग, जेबखर्ची के दो सौ रूपये एक महिने का चाहिये। ना कह नहीं सकते। पोपटभाई! सत्य बात है न।

'**सो वहाँ के सुख की जाति इसे भासित तो नहीं होती;...**' अतीन्द्रिय आत्मा का सुख तो भासित होता नहीं। ओहो..! अन्दर आनंद.. आनंद.. आनंद... क्या है अतीन्द्रिय, यह सम्यग्दर्शन बिना उसकी तो खबर है नहीं, तो लगा दे सामग्री का सुख और सिद्ध का सुख एक जाति का। सुख की जाति भासित नहीं होती। '**परन्तु महान पुरुष स्वर्ग से भी मोक्ष को उत्तम कहते हैं...**' महापुरुष कहते हैं कि स्वर्ग से मोक्ष उत्तम है '**इसलिये यह भी उत्तम मानता है। जैसे कोई गायन का स्वरूप न पहिचाने, परन्तु सभा के सर्व लोग सराहना करतके हैं इसलिये आप भी सराहना करता है।**' सब हँसते हों और दो साल का लड़का बैठा हो तो वह हँसता है, क्यों? भले ही हमें मालूम नहीं हो। हँसे, माँ-बाप हँसते हो तो वह भी हँसता है। लेकिन क्यों? हम तो कारण जानते हैं कि इसमें कुछ विस्मयता है। वह कहे, आप हँसते हो तो मैं भी हँसता हूँ। समझ में आया? ऐसे सिद्ध के सुख की जाति मालूम नहीं है, महापुरुष कहते हैं कि मोक्ष में महासुख है। हम भी कहते हैं कि महासुख है। तुझे महासुख सिद्ध का मालूम नहीं है। रागरहित,

विकल्परहित, सामग्रीरहित, मनरहित, वाणीरहित, देहातीत ऐसा, आत्मा के आनंद में से जो पावर फटकर जो पर्याय निकली... पूर्णानंद.. पूर्णानंद.. उसके आनन्द की तुलना कहाँ दूसरे के साथ? ऐसा मोक्ष जाने नहीं और स्वर्ग के साथ मिला दे तो वह मिथ्यादृष्टि है, उसे मोक्षतत्त्व की खबर नहीं है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**बुधवार, दि. १५-८-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ७**

सातवाँ अध्याय चलता है। उसमें क्या अधिकार (है)? सेठाई का, अरबोपति का जो सुख है वह तो सामग्रीजनित (है)। वह पहले कल आ गया है। सामग्रीजनित सुख है, पहले आ गया है। क्या कहते हैं? इन्द्र को सुख है वह सामग्री (जनित है)। पूर्व का जो पुण्यबन्ध था (उसके फलस्वरूप है)। ... सामग्री तरफ झुकाव हुआ, हम सुखी हैं ऐसी कल्पना की वह जहर है, राग है, दुःख है। समझ में आया? इन्द्र का सुख और अरबोपति का सुख या बड़े राजा-महाराजा का सुख, उससे सिद्ध परमात्मा अथवा मोक्ष का सुख अनन्तगुना तुम कहता है (तो) तेरी बड़ी विपर्यासबुद्धि है। क्योंकि संसार का पुण्य का सुख जो है वह सामग्रीजनित पूर्व का पुण्य है वह फला (तो) यह धूल मिली। पाँच-पचास लाख, क्रोड़, पाँच करोड़, दस करोड़ (मिले)। समझ में आया? धूल.. धूल। बराबर है? धूल मिली तुझे और उस धूल में इन्द्र भी, हमें सुख है, हमें उसमें आनन्द है, इस प्रकार राग के सुख की कल्पना में वह आनन्द मानता है।

और मोक्ष का सुख राग नहीं। मोक्ष का सुख तो आत्मा का आनन्द, जैसे चना होता है, कच्चा चना, कच्चा चना होता है न? हमारे बनिये में कहते हैं, डाळिया थया कांई शुक्रवारिया? ऐसा कहे, शुक्रवार हो तब। चने में, जना जब पक्का होता